साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 5, अंक : 25 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 12 फरवरी से 18 फरवरी 2020 पेज : 4 कीमत : 3 रुपये

बच्चों को जलवायु परिवर्तन के मायने समझाएगी यह किताब

राजस्थान के अलवर जिले स्थित अनिल अग्रवाल एनवायरमेंट ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट (एएईटीआई) में चल रहे तीन दिवसीय अनिल अग्रवाल डायलॉग 2020 के दौरान सीएसई की नई किताब जलवायु परिवर्तन, 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती का विमोचन किया गया। यह किताब बच्चों को युवाओं को पर्यावरण के प्रति जागरुकता फैलाने के उद्देश्य से तैयार की गई है। किताब बताती है कि जलवायु प्रदूषण इस वक्त की सबसे बड़ी समस्या कैसे है और इसका कैसा दुष्प्रभाव पृथ्वी पर देखने को मिल रहा है। जलवायु परिवर्तन में विश्व और भारत की भूमिका को भी किताब में दिखाया गया है। इसमें विकसित और विकासशील देशों की जिम्मेदारी पर भी विस्तार से लिखा गया है।

इस किताब का विमोचन पर्यावरण प्रदूषण (रोकथाम और नियंत्रण) प्राधिकरण (ईपीसीए) के अध्यक्ष भूरे लाल ने किया। किताब के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा, मैं सीएसई जैसी साइंटिफिक संस्था का धन्यवाद देना चाहता हूं जिसकी वजह से हमें सतत कार्य करने के लिए मार्गदर्शन मिलता रहता है। वह कहते हैं कि उनकी संस्था का सामान्य उद्देश्य है अच्छी हवा, साफ पानी और अच्छा वातावरण जो सबके लिए जरूरी है। इस उद्देश्य को पाने के लिए उन्हें सही रास्ता दिखाने वाली संस्थाओं का भी बड़ा योगदान है।

प्रदूषण की समस्या पर भूरे लाल का मानना है कि आज के समय में कचरे का जलाना और कचरा प्रबंधन सबसे बड़ी समस्या के रूप में सामने है। अगर प्रदूषण से लड़ना है तो कचरा प्रबंधन को ठीक करना होगा। किसी भी जंगल, खाली स्थान को देखते हैं तो दिखता है कि वह कचरा जलाने का स्थान या कचरा फेकने का स्थान बनता जा रहा है। वह कहते हैं कि दिल्ली में इंडस्ट्रियल इलाकों में कचरा प्रबंधन को लेकर बड़े उपाय किए जा रहे हैं।

प्रदूषण नियंत्रण को लेकर किए प्रयासों को लेकर वह कहते हैं कि दिल्ली में 30 इंडस्ट्रियल एसोशिएशन ने कचरा प्रबंधन के लिए करार किया है जिसका असर देखने को मिलेगा और आने वाले समय में पूरे एनसीआर में ऐसी कोशिश की जाएगी। चुनौतियों की बात करते हुए वे कहते हैं कि 2004 में गाड़ियों की संख्या देश भर में महज 5 करोड़ थी जो कि बढ़कर 2016 में 23 करोड़ हो गई। दिल्ली में ऑटोमोबिल की संख्या 70 के दशक में लगभग 8 लाख थी जो कि जो कि आज के समय में एक करोड़ से अधिक है। हमें सार्वजनिक यातायात को बढ़ावा देने की जरूरत है।

पूरी दुनिया को महंगा पड़ रहा है वायु प्रदूषण

पर्यावरण संबंधी शोध करने वाले दो संस्थानों ने बताया है कि जीवाश्म ईंधन से होने वाले वायु प्रदूषण की वैश्विक कीमत आठ अरब डॉलर प्रति दिन है। ये विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का 3.3 प्रतिशत है।

जीवाश्म ईंधन के कारण होने वाले वायु प्रदूषण की वैश्विक कीमत आठ अरब डॉलर प्रति दिन है। ये विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का 3.3 प्रतिशत है। यह गणना की है पर्यावरण संबंधी शोध संस्थान सेंटर फॉर रिसर्च ऑन एनर्जी एंड क्लीन एयर और ग्रीनपीस साउथईस्ट एशिया ने। वायु प्रदूषण की धनराशि के हिसाब से आंकलन देने वाले ये दोनों पहले संस्थान हैं।

इनकी रिपोर्ट में बताया गया, हमने पाया कि चीन का मुख्य भूभाग, अमेरिका और भारत पूरी दुनिया में जीवाश्म ईंधन से होने वाले वायु प्रदूषण की सबसे ज्यादा कीमत अदा करते हैं। हर साल चीन इसकी अनुमानित 900 अरब डॉलर कीमत अदा करता है, अमेरिका 600 अरब डॉलर और भारत 150 अरब डॉलर।

शोधकर्ताओं ने पाया कि जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल से जो कण निकलते हैं उनकी वजह से दुनिया भर में हर साल 45 लाख असामयिक मौतें होती हैं। इनमें से अकेले चीन और भारत में ही 18 लाख मौतें हो जाती हैं। ये नए आंकड़े विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुकूल ही हैं। संगठन का अनुमान है कि भूमि तल के वायु प्रदूषण की वजह से हर साल 42 लाख मौतें होती हैं। इनमें से अधिकतर मौतें हृदय रोग, स्ट्रोक, फेफड़ों के कैंसर और बच्चों में सांस संबंधी घातक संक्रमण की वजह से होती हैं।

ग्रीनपीस ईस्ट एशिया में कार्यरत साफ हवा के लिए अभियान चलाने वाले मिनवू सोन बताते हैं, जीवाश्म ईंधन से होने वाला वायु प्रदूषण हमारे स्वास्थ्य और हमारी अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक खतरा है, जो हर साल लाखों लोगों की जान ले लेता है और हमें उसकी अरबों डॉलर में कीमत अदा करनी पड़ती है। सन 2018 में इसकी वैश्विक कीमत2,900 अरब डॉलर थी।

रिपोर्ट में बताया गया है कि इस समस्या को सुलझाना संभव है और इसके लिए, ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों के इस्तेमाल की तरफ बढ़ कर, डीजल और पेट्रोल की गाड़ियों को धीरे धीरे हटा कर और सार्वजनिक यातायात को बढ़ावा दे कर स्थिति बदली जा सकती है।

44 पन्नों की इस रिपोर्ट में जीवाश्म ईंधनों से होने वाले वायु प्रदूषण के वैश्विक बोझ को विस्तार से समझाया गया है। हर साल वैश्विक अर्थव्यवस्था को नाइट्रोजन ऑक्साइड की वजह से 350 अरब डॉलर और ओजोन की वजह से 380 अरब डॉलर का नुकसान होता है।

सबसे महंगा प्रदूषक है पीएम 2.5, जिसकी वजह से हर साल दो हजार अरब डॉलर से भी ज्यादा का नुकसान हो जाता है। इस नुकसान का आंकलन स्वास्थ्य पर असर, काम से ली गई छुट्टियों और असामयिक मृत्यु की वजह से खो गए वर्षों को ले कर किया जाता है।

भाषा और पर्यावरण

किसी समाज का पर्यावरण पहले बिगड़ना शुरू होता है या उसकी भाषा- हम इसे समझकर संभल सकने के दौर से अभी तो आगे बढ़ गए हैं। हम 'विकसित हो गए हैं। भाषा यानी केवल जीभ नहीं। भाषा यानी मन और माथा भी। एक का नहीं, एक बड़े समुदाय का मन और माथा जो अपने आसपास के और दूर के भी संसार को देखने-परखने-बरतने का संस्कार अपने में सहज संजो लेता है। ये संस्कार बहुत कुछ उस समाज की मिट्टी, पानी, हवा में अंकुरित होते हैं, पलते-बढ़ते हैं और यदि उनमें से कुछ मुरझाते भी हैं तो उनकी सूखी पत्तियां वहीं गिरती हैं, उसी मिट्टी में खाद बनाती हैं। इस खाद यानी असफलता की ठोकरों के अनुभव से भी समाज नया कुछ सीखता है। लेकिन कभी-कभी समाज के कुछ लोगों का माथा थोड़ा बदलने लगता है। यह माथा फिर अपनी भाषा भी बदलता है। यह सब इतने चुपचाप होता है कि समाज के सजग माने गए लोगों के भी कान खड़े नहीं हो पाते। इसका विश्लेषण, इसकी आलोचना तो दूर, इसे कोई क्लर्क या मुंशी की तरह भी दर्ज नहीं कर पाता।

इस बदले हुए माथे के कारण हिंदी भाषा में 50-60 बरस में नए शब्दों की एक पूरी बारात आई है। बारातिये एक-से एक हैं पर पहले तो दूल्हे राजा को ही देखें। दूल्हा है विकास नामक शब्द। ठीक इतिहास तो नहीं मालूम कि यह शब्द हिंदी में कब पहली बार आज के अर्थ में शामिल हुआ होगा। पर जितना अनर्थ इस शब्द ने पर्यावरण के साथ किया है, उतना शायद ही किसी और शब्द ने किया हो। विकास शब्द ने माथा बदला और फिर उसने समाज के अनगिनत अंगों की थिरकन को थामा। अंग्रेजों के आने से ठीक पहले तक समाज के जिन अंगों के बाक़ायदा राज थे, वे लोग इस भिन्न विकास की 'अवधारणा' के कारण आदिवासी कहलाने लगे। नए माथे ने देश के विकास का जो नया नक्शा बनाया, उसमें ऐसे ज्यादातर इलाके 'पिछड़े' शब्द के रंग से ऐसे रंगे गए, जो कई पंचवर्षीय योजनाओं के झाड़ू-पोंछे से भी हल्के नहीं पड़ पा रहे। अब हम यह भूल ही चुके हैं कि ऐसे ही 'पिछड़े' इलाकों की संपन्नता से, वनों से, खनिजों से, लौह-अयस्क से देश के अगुआ मान लिए गए हिस्से कुछ टिके से दिखते हैं।

कुछ लोग पूरे देश की देह का, उसके हर अंग का विकास करने में जुट गए हैं। ग्राम विकास तो ठीक, बाल विकास, महिला विकास सब कुछ लाईन में है। मरूप्रदेश में आज भी ओरण (अरण्य से बना शब्द) हैं। ये गांवों के वन, मंदिर देवी के नाम पर छोड़े जाते हैं। कहीं-कहीं तो मीलों फैले हैं ऐसे जंगल। इनके विस्तार की, संख्या की कोई व्यवस्थित जानकारी नहीं है। वन विभाग कल्पना भी नहीं कर सकता कि लोग ओरणों से एक तिनका भी नहीं उठाते। अपने को, अपने समाज को समझे बिना उसके विकास की इस विचित्र उतावली में गज़ब की सर्वसम्मति है। सभी राजनैतिक दल, सभी सरकारें, सभी सामाजिक संस्थाएं, चाहे वे धार्मिक हों, मिशन वाली हों, या वर्ग संघर्ष वाली- गर्व से विकास के काम में लगी हैं, विकास की इस नई अमीर भाषा ने एक नई रेखा भी खींची है- गरीबी की रेखा। लेकिन इस रेखा को खींचने वाले संपन्न लोगों की गरीबी तो देखिए कि तमाम कोशिशें रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में कमी लाने के बदले उसे लगातार बढ़ाती जा रही हैं।

पर्यावरण की भाषा इस सामाजिक-राजनैतिक भाषा से रत्ती-भर अलग नहीं है। वह हिंदी भी है यह कहते हुए डर लगता है। बहुत हुआ तो आज के पर्यावरण की ज्यादातर भाषा देवनागरी कही जा सकती है। लिपि के कारण राजधानी में पर्यावरण मंत्रालय से लेकर हिंदी राज्यों के क़स्बों, गांवों तक के लिए बनी पर्यावरण संस्थाओं की भाषा कभी पढ़ कर तो देखें। ऐसा पूरा साहित्य, लेखन, रिपोर्ट सब कुछ एक अटपटी हिंदी से पटा पड़ा है।

कचरा- शब्दों का और उनसे बनी विचित्र योजनाओं का ढेर लगा है। इस ढेर को 'पुनर्चक्रित' भी नहीं किया जा सकता। दो- चार नमूने देखें। सन् 80 से आठ-दस बरस तक पूरे देश में सामाजिक वानिकी नामक योजना चली। किसी ने भी नहीं पूछा कि पहले यह तो बता दो कि असामाजिक वानिकी क्या है? यदि इस शब्द का, योजना का संबंध समाज के वन से है, गांव के वन से है तो हर राज्य के गांवों में ऐसे विशिष्ट ग्रामवन, पंचायती वनों के लिए एक भरा-पूरा शब्द-भंडार, विचार और व्यवहार का संगठन काफ़ी समय तक रहा है। कहीं उस पर थोड़ी धूल चढ़ गई थी तो कहीं वह मुरझा गया था, पर वह मरा तो नहीं था। उस दौर में कोई संस्था आगे नहीं आई इन बातों को लेकर। मरूप्रदेश में आज भी ओरण (अरण्य से बना शब्द) हैं। ये गांवों के वन, मंदिर देवी के नाम पर छोड़े जाते हैं। कहीं-कहीं तो मीलों फैले हैं ऐसे जंगल। इनके विस्तार की, संख्या की कोई व्यवस्थित जानकारी नहीं है। वन विभाग कल्पना भी नहीं कर सकता कि लोग ओरणों से एक तिनका भी नहीं उठाते।

अकाल के समय में ही इनको खोला जाता है। वैसे ये खुले ही रहते हैं, न कटीले तारों का घेरा है, न दीवारबंदी ही। श्रद्धा, विश्वास का घेरा इन वनों की रखवाली करता रहा है। हज़ार- बारह सौ बरस पुराने ओरण भी यहां मिल जाएंगे। जिसे कहते हैं बच्चे-बच्चे की ज़बान पर ओरण शब्द रहा है पर राजस्थान में अभी कुछ ही बरस पहले तक सामाजिक संस्थाएं, श्रेष्ठ वन विशेषज्ञ या तो इस परंपरा से अपरिचित थे या अगर जानते थे तो कुछ कौतूहल भरे, शोध वाले अंदाज़ में। ममत्व, यह हमारी परंपरा है, ऐसा भाव नहीं था उस जानकारी में।

ऐसी हिंदी की सूची लंबी है, शर्मनाक है। एक योजना देश की बंजर भूमि के विकास की आई थी। उसकी सारी भाषा बंजर ही थी। सरकार ने कोई 300 करोड़ रुपया लगाया होगा पर बंजर-की-बंजर रही भूमि। फिर योजना ही समेट ली गई। और अब सबसे ताज़ी योजना है जलागम क्षेत्र विकास की। यह अंग्रेजी के वॉटरशेड डेवलपमेंट का हिंदी रूप है। इससे जिनको लाभ मिलेगा, वे लाभार्थी कहलाते हैं, कहीं हितग्राही भी हैं। 'यूज़र्स ग्रुप का सीधा अनुवाद उपयोगकर्ता समूह भी यहां है। तो एक तरफ़ साधन संपन्न योजनाएं हैं, लेकिन समाज से कटी हुई। जन भागीदारी का दावा करती हैं पर जन इनसे भागते नज़र आते हैं तो दूसरी तरफ़ मिट्टी और पानी के खेल को कुछ हज़ार बरस से समझने वाला समाज है। उसने इस खेल में शामिल होने के लिए कुछ आनंददायी नियम, परंपराएं, संस्थाएं बनाई थीं। किसी अपरिचित शब्दावली के बदले एक बिल्कुल आत्मीय ढांचा खड़ा किया था। चेरापूंजी, जहां पानी कुछ गज़ भर गिरता है, वहां से लेकर जैसलमेर तक जहां कुल पांच-आठ इंच वर्षा हो जाए तो भी आनंद बरस गया-ऐसा वातावरण बनाया। हिमपात से लेकर रेतीली आंधी में पानी का काम, तालाबों का काम करने वाले गजधरों का कितना बड़ा संगठन खड़ा किया गया होगा। कोई चार-पांच लाख गांवों में काम करने वाले उस संगठन का आकर इतना बड़ा था कि वह सचमुच निराकार हो गया।

आज पानी का, पर्यावरण का काम करने वाली बड़ी-से-बड़ी संस्थाएं उस संगठन की कल्पना तो करके देखें। लेकिन वॉटरशेड, जलागम क्षेत्र विकास का काम कर रही संस्थाएं, सरकारें, उस निराकार संगठन को देख ही नहीं पातीं। उस निराकार से टकराती हैं, गिर भी पड़ती हैं, पर उसे देख, पहचान नहीं पातीं। उस संगठन के लिए तालाब एक वॉटर बॉडी नहीं था। वह उसकी रतन तलाई थी। झुमरी तलैया थी, जिसकी लहरों में वह अपने पुरखों की छवि देखता था। लेकिन आज की भाषा जलागम क्षेत्र विकास को मत्स्य पालन से होने वाली आमदनी में बदलती है।

इसी तरह अब नदियां यदि घर में बिजली का बल्ब न जला पाएं तो माना जाता है कि वे 'व्यर्थ में पानी समुद्र में बहा रही है।' बिजली जरूर बने, पर समुद्र में पानी बहाना भी नदी का एक बड़ा काम है। इसे हमारी नई भाषा भूल रही है। जब समुद्रतटीय क्षेत्रों में भूजल बड़े पैमाने पर खारा होने लगेगा - तब हमें नदी की इस भूमिका का महत्व पता चलेगा।

कुपोषण मुक्त होने में भारत को लगेंगे कई दशक

इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन और गैर लाभकारी संगठन पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया ने सितंबर 2019 में संयुक्त रूप से एक रिपोर्ट जारी कर कहा गया कि राज्यों में पांच साल तक के बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण कुपोषण होगा। भारत में 2017 में पांच साल तक के 10.4 लाख बच्चे कुपोषण की भेंट चढ़ गए। कुपोषण के कारण 68.2 प्रतिशत से अधिक मौतें हुई। द लांसेट में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार, यह हालात तब हैं जब 1990 से 2017 के बीच पांच साल तक के बच्चों में समय पूर्व जन्म, निमोनिया, डायरिया, जन्मजात असंगति और संक्रमण से होने वाली मौतों में 65 प्रतिशत की कमी आई है और कुपोषण से होने वाली मौतें केवल 3 प्रतिशत रह गई हैं। अक्टूबर 2019 में भूख को दूर करने की दिशा में हुई प्रगति और बाधाओं का आकलन करने वाले वैश्विक भूख सूचकांक (डब्ल्यूएचआई) ने 117 देशों में भारत को 102 पायदान पर पाया। सूचकांक में भारत को 100 में से 30.3 अंक ही हासिल हो सके जो गंभीर स्थिति के सूचक हैं। अल्प पोषण, वेस्टिंग, स्टंटिंग और शिशु मृत्युदर के आधार पर हासिल अंक बताते हैं कि भारत में भूख की स्थिति बेहद खतरनाक है।

अगर वर्ष 2000 से विश्व भूख सूचकांक का विश्लेषण करें तो भयावह तस्वीर उभरती है। इस अवधि में भारत के अंकों में केवल 21.9 प्रतिशत का ही सुधार हुआ है, जबकि ब्राजील ने 55.8 प्रतिशत, घाना ने 51.2 प्रतिशत, मालावी और इथियोपिया ने 48.3 प्रतिशत, नेपाल ने 43.5 प्रतिशत, बांग्लादेश ने 28.5 प्रतिशत और पाकिस्तान ने 25.6 प्रतिशत सुधार किया है। देश में 1975 से कुपोषण से निपटने के लिए दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम इंटीग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेंट सर्विसेस (आईसीडीएस) चल रहा है। सभी राज्यों में जन वितरण प्रणाली है ताकि गरीबों और पहुंच से दूर इलाकों में भी सस्ती दरों पर अनाज मिल सके। इन सबके बावजूद यह प्रश्न बना हुआ है कि क्या भारत इस गति से संयुक्त राष्ट्र के भूख और कुपोषण से संबंधित सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) को 2030 तक प्राप्त कर पाएगा?

एसडीजी के 17 लक्ष्यों में दो लक्ष्य भूख को खत्म करने और स्वस्थ जीवन व कल्याण को प्रोत्साहित करने से संबंधित हैं। एसडीजी लक्ष्य 2.2 के अनुसार, सभी प्रकार के कुपोषण को 2030 तक खत्म करना है। इसमें 2025 तक अंतरराष्ट्रीय सहमति से निर्धारित पांच साल के बच्चों में स्टंटिंग (उम्र के अनुसार कम लंबाई) और वेस्टिंग (लंबाई के अनुसार कम वजन) के लक्ष्य के साथ ही किशोर लड़कियों, गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली महिलाओं और बुजुर्गों की पोषण की जरूरतों को हासिल करने का लक्ष्य भी शामिल है। एसडीजी लक्ष्य 3.2 के मुताबिक, 2030 तक नवजातों और पांच साल तक के बच्चों की रोकी जा सकने वाली मौतों पर लगाम लगाना है। सभी देशों को प्रति 1,000 नवजात बच्चों पर मृत्युदर को 12 और पांच साल के बच्चों की मृत्युदर को 25 पर लाना है। भारत उन वार्ताओं का प्रमुख साझेदार जिनके फलस्वरूप एसडीजी की शुरुआत हुई, इसलिए उसे एसडीजी लक्ष्य को हासिल करना होगा।

हालात में सुधार के लिए प्रधानमंत्री ने 2018 में एक महत्वाकांक्षी मिशन पोषण अभियान की शुरुआत की थी। इसके मुताबिक, भारत को 2022 तक कुपोषण से मुक्त करना है। बच्चों में स्टंटिंग और अल्प पोषण साल में दो प्रतिशत कम करना है। साथ ही महिलाओं, युवा बच्चों व बच्चियों में एनीमिया में साल में 3 प्रतिशत की कमी लानी है। जन्म लेने वाले बच्चों के कम वजन में भी साल में दो प्रतिशत का सुधार करना है। इस लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार ने तीन सालों के लिए 2,849.54 करोड़ रुपए का बजट आवंटित किया है। 2017-18 से इस बजट की शुरुआत हो चुकी है और मुख्य रणनीतियां भी तय कर दी गई हैं। इसमें बच्चों को पहले छह महीने और उसके बाद दो साल तक स्तनपान, नवजात की बेहतर देखभाल और कम वजन के नवजातों पर विशेष ध्यान देने का प्रावधान है। साथ ही प्रधानमंत्री मातृ वंदन योजना के तहत महिलाओं को सुरक्षा देने और कानूनी उम्र से पहले विवाह न होने देने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

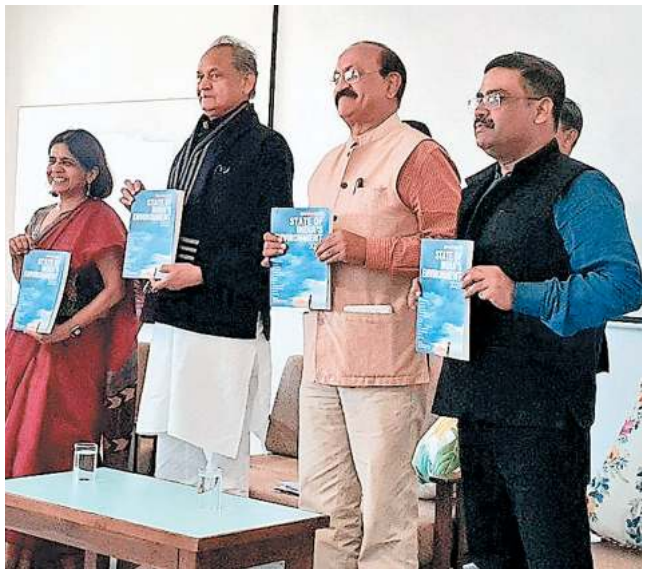

गर्म होती धरती और समुद्र से आ रही सूखा, बाढ़ की समस्या

अनिल अग्रवाल डायलॉग 2020 के पहले दिन पश्चिमी विक्षोभ, असामान्य मौसम, बाढ़ और सूखे का जलवायु परिवर्तन से संबंध पर चर्चा हुई। चर्चा में सूखे के बाद बाढ़, बढ़ती चक्रवात की घटनाएं, खेतों पर टिड्डी दल के हमले जैसी घटनाओं को जलवायु आपातकाल माना। कार्यक्रम में मौजूद विशेषज्ञों ने कहा कि इस वक्त जिस भी समस्या पर नजर जाती है, चाहे वह कृषि से संबंधित हो या पलायन हो, हर जगह जलवायु परिवर्तन जिम्मेदार दिखता है। पहले भी मौसम में असमानता देखी गई है लेकिन हाल के वर्षों में इसका रूप बदल गया है। एक ही स्थान पर बाढ़ और सूखा की घटनाएं हो रही हैं। लोगों पर दोनों स्थितियों का असर लंबे समय तक रहता है और इससे उनकी आर्थिक स्थिति भी प्रभावित होती है। जलवायु परिवर्तन का एक लक्षण टिड्डी दल का हमला भी है।

इससे पहले अक्टूबर 2018 में दो तरह के चक्रवात से बारिश में बढ़ोतरी हुई थी जिससे ईरान, पाकिस्तान के रास्ते में भारत आकर टिड्डी दल ने हमला कर दिया। बारिश की वजह से टिड्डों को प्रजनन में मदद मिलती है। यह हमला इतना खतरनाक था कि पाकिस्तान ने इसे राष्ट्रीय आपातकाल घोषित किया था। इस साल फिर से ऐसा ही हमला हुआ है।

सबसे चर्चित शब्द क्लाइमेट चेंज

जेएनयू के पर्यावरण विज्ञान स्कूल के प्रोफेसर एपी डिमरी ने कहा कि पिछले 10 वर्ष में क्लाइमें चेंज सबसे अधिक चर्चित रहने वाला शब्द रहा है। इस शब्द की कई बार सही तो कई बार गलत व्याख्या हुई है। पश्चमी विक्षोभ की घटनाएं पृथ्वी के 3 डिग्री तक गर्म होने की वजह से बढ़ी है। इसी वजह से सर्दियों में भी बारिश की घटनाएं बढ़ी हैं, साथ ही ओलावृष्टि की घटनाएं भी सामने आई हैं। मॉनसून के तंत्र के साथ जब पश्चिमी विक्षोभ का मिलाप होता है तब तेज बारिश की घटना होती है। ऐसी ही एक बारिश की वजह से केदारनाथ जैसी त्रासदी आई थी।

एटमॉस्फेरिक एंड ओशन साइंस एंड अर्थ सिस्टम साइंसेज, यूनिवर्सिटी ऑफ मैरीलैंड, यूएसए के प्रोफेसर रघु मुर्तुगुड्डे ने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में सूखा और बारिश दोनों घटनाएं बढ़ी है। इन घटनाओं से दिखता है कि अगर कहीं बारिश अधिक हुई है तो इसका मतलब वहां कहीं का पानी वाष्पीकृत होकर आया है, उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के मराठवाड़ा में भीषण सूखा पड़ा तो वहीं के समुद्री तट पर भीषण बारिश हुई। समुद्र की गर्म सतह मॉनसून के बाद चक्रवात की घटनाओं में वृद्धि कर रही है। हिन्द महासागर और अरब सागर की गर्मी की वजह से भारत में नम हवा आती है।

वह कहते हैं कि इस वजह से भीषण बारिश की घटनाओं में बढ़ोतरी हुई है। बाढ़ की घटनाओं में तीन गुना वृद्धि हुई है। धरती पर पेड़-पौधे लगाकर गर्मी से बचाव तो हो सकता है लेकिन लगातार गर्म होती पृथ्वी को वापस पहले जैसी स्थिति में लाना मुश्किल होगा। मौसम की मार से बचने के लिए इसका सटीक पूर्वानुमान और तैयारी की जरूरत है और अच्छी बात यह है कि भारत अब 6 से 7 दिन पहले भीषण बारिश या चक्रवात का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम हो गया है।

पर्यावरण और बौद्ध चिंतन

मानव का विकास प्रकृति की गोद में हुआ है इसलिए मनुष्य शुरू से ही इसके दोहन करते रहे हैं। जब तक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कम स्तर पर होता रहा है, तब तक प्रकृति में एक संतुलन बना रहा है क्योंकि उस कम स्तरीय दोहन से होने वाली क्षति-पूर्ति को प्रकृति खुद-ब-खुद ठीक करने की आमदा रखती है। समय के साथ मनुष्यों की संख्या में न सिर्फ बड़े स्तर पर विकास हुआ, बल्कि लोगों में स्वार्थ की भावना भी प्रबल हुई, जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यधिक मात्रा में होने लगी और प्रकृति में असंतुलन पैदा होने लगा। आज से लगभग पाँच सौ साल पहले विज्ञान का विकास हुआ, जिसके कारण मशीनीकरण को बढ़ावा मिला और उत्पादकता में एक शानदार ति देखने को मिला, फलस्वरूप पूंजीवाद का उदय हुआ। अशोक कुमार पांडे की किताब मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्त के अनुसार अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी यूरोप में नए वैज्ञानिक आविष्कारों और सामंतवाद से पूँजीवाद के सं मण की सदियाँ थीं। न केवल यान्त्रिकी के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे थे बल्कि प्राकृतिक विज्ञानों में भी नित नए प्रयोग हो रहे थे। यह सब सामंतीवादी उत्पादन सम्बन्धों के पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों में बदलने की प्रि या में अपनी भूमिकाएँ भी निभा रहे थे और उससे प्रभावित भी हो रहे थे। ज़ाहिर है इसका असर पर्यावरण पर पड़ता।

समय के साथ हमने उपभोक्त ावाद पर केन्द्रित सभ्यता निर्मित करते चले गए और ऐसी जीवन शैली अख़्तियार कर ली कि वह पर्यावरण का दुश्मन बन गई। %इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज% की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि बीते 50 सालों में हमने धरती का जितना शोषण किया है और जिस तरह की जीवन शैली अपनाई हैं, उसका ही असर है की धरती का तापमान बढ़ रहा है। जंगलों को जिस प्रकार से नष्ट किया जा रहा हैं और रासायनिक ऊर्जा का जिस तरह से इस्तेमाल हो रहा है, इसके कारण धरती पर ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। इसके कारण हमें श्वास लेना मुश्किल हो रहा है। हमारी नदियाँ सुख रही हैं, पीने को पानी भी दूषित हो रही हैं। वर्षा का तंत्र विगड़ गया हैं, जिसके वजह से भूमिगत पानी दिन-ब-दिन कम होते जा रही है। धरती से जीव-जंतुओं और वनस्पतियों की कई प्रजातियाँ या तो नष्ट हो गई या फिर ख़त्म होने के कगार पर है।

शोध रिपोर्टों के अनुसार इसका मुख्य कारण जलवायु में परिवर्तन होना है। जलवायु के इस परिवर्तन का असर कृषि पैदावार पर भी पड़ रहा है। जिसके कारण पिछले पाँच सालों में लाखों किसानों ने आत्महत्या किया। गेहूँ, धान, मक्क ा जैसी फसलें भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रहे है। द वाइर की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के कृषि मंत्रालय ने एक समिति को बताया कि अगर समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो 2050 तक गेहूं का उत्पादन छह से 23 प्रतिशत तक कम हो सकता है. वहीं 2020 तक जलवायु परिवर्तन की वजह से चावल का उत्पादन चार से छह प्रतिशत तक कम हो सकता है। वास्तव में, ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण अंधाधुंध प्रकृति के शोषण से पैदा हुयी समस्याएँ हैं।

हाल के सदियों में मनुष्य को प्राकृतिक रूप से भयानक आपदा से सामने करने को विवश होना पड़ा है, जो पृथ्वी पर सभी जीवन के अस्तित्व को खतरे में डालती है। वैज्ञानिक जिसे पारिस्थितिकी संकट का नाम देते है। इस संकट का कारण प्रकृति के मूल नियम के प्रति मनुष्य की अज्ञानता ही है। जिसे दूर करने के उद्देश्य से दुनियाभर के बुद्धजीवी, दार्शनिक, धार्मिक व्यक्ति आदि लोगों के बीच जाकर काम कर रहे हैं तथा उन्हें जागरूकता के माध्यम से पर्यावरण का दोहन करने से रोकने की कोशिश कर रहे हैं। भारत में प्रकृति से प्रेम करने की विशेष परंपरा रही हैं। आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व पर्यावरण के प्रति बुद्ध का लगाव देखने से यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि वे मनुष्य के कृत को जानने में सक्षम थे इसलिए उन्होने न सिर्फ खुद प्रकृति से प्रेम किए, वरन् संघ के भिक्षुओं को विशेष निर्देश दिए कि उनके किसी भी कृत से पर्यावरण को नुकशान न पहुँचें क्योंकि जैसाकि कहा जाता है कि जिस व्यक्ति का जन्म जैसे वातावरण में होता हैं, वह जीवन भर उसी वातावरण को पसंद करता है। चाहे गौतम का जन्म हो या सिद्धार्थ से बुद्ध बनने की प्रि या और उसके बाद का उपदेशक का जीवन हो या महापरिनिर्वाण की प्राप्ति, सभी प्रकृति के सौम्य घटा में घटित हुई है। यहीं कारण है कि बौद्ध धर्म के विकास में कृषि, वन, वृक्ष और पर्यावरण का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। बुद्ध के उपदेश में भी कृषि, वन और वृक्ष इत्यादि के उदाहरण भरे पड़े हैं। बौद्ध शिक्षण में पेड़-पौधे, मानव, पशु-पक्षियों और प्रकृति से एकदम निकट का रिश्ता स्थापित की गई है, जिसमे सदृश्य या अदृश्य सभी प्रकार के जीव-जंतुओं के कल्याण के लिए सिद्धान्त प्रतिपादित की गई हैं। बौद्ध साहित्य त्रिपिटक में भी पर्यावरण से संबन्धित बहुत उपदेश को दिया गया हैं। विनय पिटक, जिसे बौद्ध धर्म के %आचार संहिता% कहा जाता है, में वातावरण को संतुलित बने रहने के उद्देश्य से पेड़ काटने से विरत् का उपदेश दिया गया। कोई भिक्षु अगर किसी तरह की पेड़ काटता है तो उसे पाराजिक नामक अपराध में रखा जाता है-

महग्धरुक्खे छिन्नमत्ते पाराजिकं।

विनय पिटक के ही छप्पनवें पाचित्तिय में कहा गया है कि जरूरत न पड़ने पर भी कोई निरोग भिक्खु तापने की इच्छा से आग जलाए तो उसे पाचित्तिय कहा गया है-

यो पन भिक्खुअगिलानो विसीब्बनापेक्खो जोरति समादहेय्य ता समादहरपेय्य वा पाचित्तिय ति।

इतना ही नहीं, बौद्ध परंपरा में बारिश के मौसम में तीन महीने वर्षावास का विधान है, जिसमें किसी भी भिक्षु को बाहर निकलने से मना किया गया है ताकि नए पौधों, हरे तृणों का मर्दन न हो तथा एक इंद्रिय वाले जीव, वनस्पति को पीड़ा न पहुँचे।

सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में अनेकों स्थानों पर पर्यावरण की रक्षा हेतु तमाम तरह की उपदेश दिए गए हैं। जिसको आधार बना कर विश्व के अनेकों देशों ने पर्यावरण की रक्षा हेतु आंदोलन चलाएं, लोगों को जागरूक करने का काम आदि किया। ऐसे काम को अंजाम देने में कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं, जिन्होंने बौद्ध शिक्षा के आधार पर पर्यावरण चिंतन की नीब रखी जो आगे चलकर एक आंदोलन का रूप लिया। वे हैं- जोआना माइकी, जॉन सीड, गैरी स्नाइडर और थीच न्हात हान (सामान्यतः वे बौद्ध सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जा न` जाते है, किन्तु फिर भी इनकी शिक्षा में पर्यावरण संरक्षण की पर्याप्त स्रोत ढूँढे जा सकते हैं) आदि।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गुह्य पारिस्थितिकी (डीप एकोलोगी) में थीच न्हात हान का सबसे महत्वपूर्ण योगदान ध्यान (माइंडफुलनेस) प्रथाओं के शिक्षण में रहा है जो लोगों को अपने शरीर और प्राकृतिक दुनिया के संपर्क में लाने में मदद करता है। वे अपनी किताब द सन माइ हार्टमें कहते है जब कोई ध्यान से जागरूकता की स्थिति में होते है तो उन्हें लगता है कि दुनिया मेरा शरीर है और दुनिया को गर्मी और सजीवता देने वाला सूरज मेरा दिल। उनके अनुसार, कोई ध्यानपूर्वक नदी किनार चलता है; आसपास की हवाओं, सुगंध-दुर्गंध को महसूस करता, पानी को ध्यान से देखता है और फिर उसे पता चलता है कि पानी में कूड़ा-करकट, उसके ऊपरी सतह पर झाग जमा है तथा रासायनिक संबन्धित दुर्गंध आ रही है तो वह व्यक्ति इसे अपनी बीमारी के रूप में लेगा तथा इसे दूर करने की कोशिश करेगा बशर्ते कि वह व्यक्ति नदी से लगाव रखता हो। यह अभ्यास किसी भी व्यक्ति को प्राकृतिक दुनिया से संपर्क बढ़ाने में मददगार हो सकता है। गुह्य पारिस्थितिकी (डीप एकोलोगीस्ट) का तर्क है कि प्राकृतिक दुनिया जटिल अंतर-संबंधों का एक सूक्ष्म संतुलन है जिसमें जीवों का अस्तित्व पारिस्थितिक तंत्र के भीतर दूसरों के अस्तित्व पर निर्भर है। बौद्ध शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतित्यसमुत्पाद है। इसे कार्य-कारणता का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की तमाम घटनाएँ या कार्य किसी कारण से होता है अर्थात सभी कार्य के पीछे अवश्य कोई कारण होता है। यह सिद्धान्त पर्यावरण संरक्षण में विशेष महत्व रखता है। उदाहरण के तौर पर, थीच न्हात हान ने एक कागज की एक शीट पकड़कर अपने छात्रों से पूछा कि क्या वे इसे बादल, सूरज और मिट्टी में देख सकते है? दूसरे शब्दों में, कागज पेड़ से आता है और पेड़ बादल से बारिश, सूरज से गर्मी और मिट्टी से खनिजों के बिना मौजूद नहीं हो सकता।

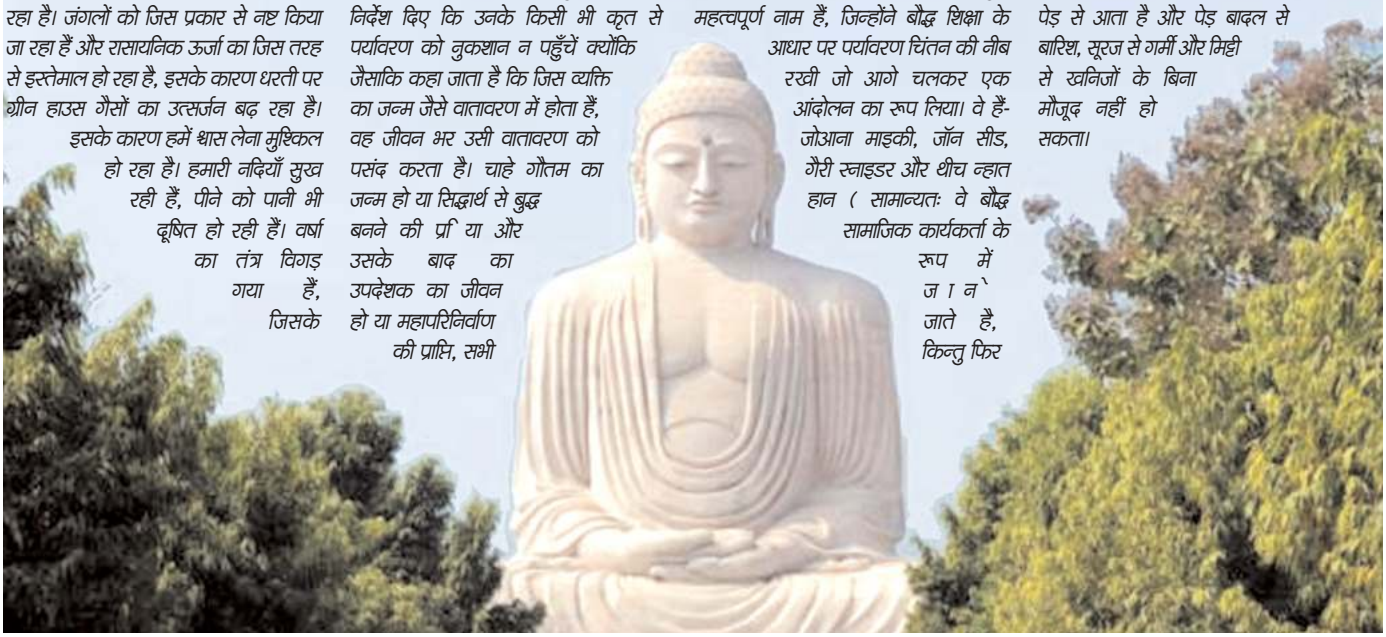

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008